कला जगत
डॉ. सत्यभामा आडिल

पंडवानी गायन और कापालिक शाखा

छत्तीसगढ़ अंचल में पंडवानी गायकी में महिलाओं का प्रवेश और कापालिक शाखा का उभरना लोककला के क्षेत्र में रोचक घटना है। कापालिक शाखा शैली में मस्तिष्क की कल्पना का सहारा लेकर खड़े होकर, अभिनयात्मक ढंग से पंडवानी गायकी प्रस्तुत की जाती है। इस शैली में महिलाएं आगे आई, इनमें तीजन बाई, पूर्णिमा बाई, प्रभा यादव, लक्ष्मी बाई और ऋतु वर्मा के साथ आजकल कई कलाकार इस शैली में बेहतर प्रस्तुति कर रहे हैं। कापालिक शैली में अभिनय तत्व की प्रधानता होती है तथा अनेक काल्पनिक कथाएं एवं वर्तमान देश काल परिस्थिति के अनुसार उपदेशात्मक तत्व भी जोड़ दिए जाते हैं। पंडवानी गायकी में अभिनय तत्व को जोड़कर पौरूष और ओज की बानगी देने वाली तीजन बाई ने विदेशों में नाम कमाया। महिला होने के नाते, पौरूष युक्त अभिनय का आकर्षण, मनोरंजन व औत्सुक्य का, कला के साथ जोड़ने का काम किया। पंडवानी गायन में आज मनोरंजन अधिक आ गया है। आध्यात्मिक भाव व उदात्तता विलुप्त हो गई। तंबूरा (इकतारा) बजाया नहीं जाता। तंबूरा को शो पीस की तरह पकड़ा जाता है। इन सब दोषों के समाविष्ट हो जाने से पंडवानी का शुद्ध रूप दिखाई नहीं देता। परंतु पंडवानी गायन की लोकप्रियता बरकरार है। पहले भक्ति भाव की प्रधानता थी। धीरे धीरे मनोरंजन तत्व की प्रधानता हो गई।

संस्कृति
कमलेश यादव

कल्पवृक्ष की तरह पूजते हैं सल्फी पेड़ को

बस्तर अंचल के ग्रामीण जन सल्फी के पेड़ को कल्प वृक्ष मानते हैं, क्योंकि यह एक रसदार वृक्ष होता है, इतना ही यहां के निवासियों के लिए यह पेड़ आर्थिक संसाधन का महत्वपूर्ण अंग होता है। सल्फी को आदिवासी प्रकृति प्रदत्त मानते हैं इसे वे आकाशवाणी, आकाशगंगा और आकाशपानी भी कहते हैं। कई परिवारों की रोजी रोटी इसी पेड़ से चलती है। जब किसी परिवार में अचल संपत्ति का बंटवारा होता है उसमें सल्फी पेड़ को भी शामिल किए जाते हैं। जब बेटी का विवाह होता है तब वर पक्ष को सल्फी पेड़ को दहेज में देने की प्रथा है। दंडाभी मारिया जाति के लोग अपने ही सल्फी वृक्ष के रस का पान करना उन्हें अच्छा लगता है। आदिवासी सल्फी वृक्ष को कामिनी कन्या वर्ण का मानते हैं, जिसकी पवित्रता का पूरा ध्यान रखा जाता है। इस पेड़ के रोपण, पेड़ से रस निकालने और सेवन में विधि विधान का पूरी तरह से पालन करते हैं। पेड़ के उपयोग में रस्म निभाने में कोई कमी नहीं करते। पेड़ से रस निकालने की प्रक्रिया एक जानकर व्यक्ति द्वारा ही सुनिश्चित किया जाता है। वृक्ष के आसपास रोज गोबर से लीप कर साफ सुथरा रखा जाता है और जरूरत पड़ने पर घेरा भी बनाई जाती है। 30 से 40 फुट तक ऊंचाई वाले इस वृक्ष से रस निकालने हेतु बांस का उपयोग किया जाता है जिसे टेंगी कहा जाता है। सल्फी को तुंबा या तुमड़ी में एकत्र की जाती है। एकत्र सल्फी के उपयोग के लिए पत्तों की कटोरी बनाई जाती है। सल्फी से संबंधित और अनेक धार्मिक मान्यताएं यहां प्रचलित हैं, जिसे अंचल के लोग आज भी विधि विधान से पूरी करते हैं।

चिन्हारी
बद्री प्रसाद पारकर

नंदावत हे अब सील लोड़हा

गरमी घरी पहली आमा बजार या पेड़ में देखथन त आमा के सील लोड़हा में पीसे आमा के चटनी के सुरता आ जथे। पहली महतारी घर के नोनी मन कच्चा आमा ल हंसिया में छोल के छोटे छोटे चानी बना के सील में रख के वोला कुचरतीन, वोमें लसुन, प्याज, लाली या हरियर मीरचा, गड़ा नून ल डार पिसतिन तब आमा के चटनी के सुवाद के का पूछना। अंगरी ल चाटत चाटत हाथ ल लोगन चाट डरत रिहिन। ये आमा के चटनी संग बासी खाए के मजा ह कुछ अलगे रीहिस। वइसने सील लोड़हा के पताल के चटनी खाए के मजा खूब आय, फेर चिरपोटी बंगाला चटनी के सुवाद के बात अलगे रीहिस। सील लोड़हा के जब गोठ चलत हे तब जानन पहिली पीसे हरदी के जगा गांठ हरदी के उपयोग होय। हरदी, मिर्ची येल सील लोड़हा में पीस के साग में डारे जाय। सील लोड़हा के उपयोग ले तन में खून के हलचल घलव बने होते रीहिस। अब रेडीमेड जीनिस के उपयोग होवत हे। मिक्सी के उपयोग पीसे बर होवत हे। आजकाल के साग भाजी में एकर सेती सुवाद देखे बर नी मिले। हमर मन के अलाली ह आनी बानी के रूप में हमर आगू में आवत हे।

छत्तीसगढ़ के कभी चर्चित रहे लोक नाट्य रहस अब विलुप्त होने के कगार पर है इसके पीछे अनेक कारण नजर आते हैं। कहीं कहीं खासकर बिलासपुर अंचल में ही इस लोक नाट्य को देखा जा सकता है। लोक नाट्य रहस में सर्वप्रथम लहरा होता है जिसमें सूत्रधार भगवान गणेश और मां सरस्वती की प्रतिमा लाकर मंच के चारों ओर घूम घूम कर वंदना करता है ताकि रहस यज्ञ में कोई बाधा न आए।

लोक नाट्य रहस में लहरा

लोक नाट्य : डा. तृषा शर्मा

रहस के नाटकीय ताना बाना का जादुई संसार यही से बनना प्रारंभ होता है। रहस नाट्य विधा यज्ञ की परम्परा से जुड़ी होकर इतर कालीन नाट्य चिंतकों की परिकल्पनाओ का केन्द्र है। पूर्व रंग में लहरा है, देवी देवताओं का आव्हान है, कला - कलाकार और दर्शकों के मध्य सीधा संवाद है। रहस में लोक नाट्य से जुड़ी परंपराएं, लोक मंगल की कामनाएं हैं। कलाकार की प्रतिबद्धता कथा, मंच और दर्शक के प्रति है। कृष्ण के दर्शन को आए शंकर मंच के नीचे दर्शकों के बीच अलख जगाते हैं। एक ही पात्र बिना वेशभूषा में परिवर्तन किए कई पात्रों को एक ही समय और एक ही प्रसंग में अभिनीत करता है। कृष्ण की माखन चोरी की शिकायत करने गोपियां यशोदा के पास जाती हैं। मंच पर कृष्ण और उनके सखा के अतिरिक्त केवल चार गोपियां हैं। चारों अभी नृत्य कर रही थीं। व्यास के माखन चोरी के प्रसंग का आख्यान प्रारंभ करते ही वे गोपियां बन गई। यशोदा कृष्ण का पक्ष ले रही हैं। शेष गोपियां उलाहना दे रही हैं।

मंच के एक ओर कंस का दरबार लगा है। श्रीधर ब्राह्मण कृष्ण को मारने की अनुमति लेने कंस के पास आया है। मंच के दूसरी ओर कृष्ण छोटे से पालने में अधलेटे से बैठे हैं। श्रीधर कृष्ण को मारने जाता है। कृष्ण के जीभ उमेठने के बाद श्रीधर ब्राह्मण के अभिनय को देख दर्शक गण हंस रहे हैं। मंच के एक किनारे बैठा कंस भी हंस रहा है। श्रीधर ब्राह्मण जब कंस के पास जाता है तो कंस की मुखाकृति आक्रोश और अजीब से भय से भरी दिखती है। पूतना कृष्ण को मारने जाती है। वह मुखौटा लगाई है यशोदा के घर पहुंचने के पहले वह सोचती है कि एक सुंदर स्त्री बन कर जाना ही ठीक रहेगा। वह मुखौटा वहीं उतार देती है। जब कृष्ण द्वारा मारी जाती है तब वह मुखौटा फिर लगा लेती है। इस तरह रहस के कलाकारों की नैसर्गिक क्षमता ही महत्वपूर्ण है। वह एक मायावी संसार की रचना करता है। दर्शकों के साथ दर्शक की तरह भागीदारी करता है और अपनी कला द्वारा आनन्द प्रदान करता है। अपने पात्र को जीते हुए भी उससे तटस्थता बनाए रखता है।

गांव की कहानी : ऋषिराज पांडेय

राजवंश को स्मरण कराता ग्राम कुटेलागढ़

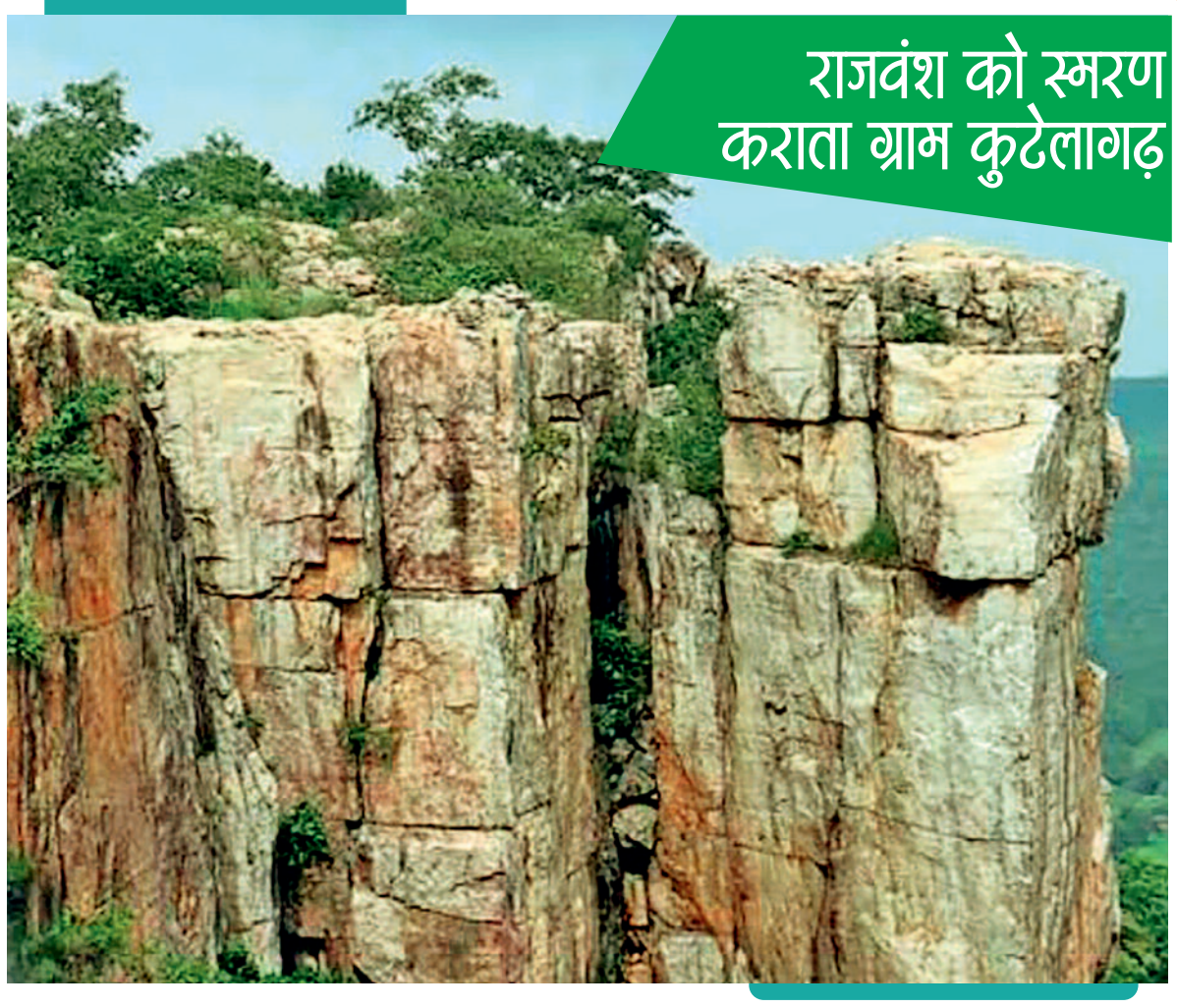

वर्तमान सरायपाली से 3 कि मी दूरी पर दक्षिण दिशा की ओर जाने वाली बस्तीपाली मार्ग के बाई ओर कुटेलागढ़ स्थित है। यह सामान्य मैदानी गढ़ है जिसका निर्माण भैना राजवंशों ने किया था, जो आज भी विगत वैभव का स्मरण कराता है। उस कालखंड में शिवरीनारायण से सराईपाली, पदमपुर, नृसिंहनाथ प्रमुख मार्ग था। साथ ही फुलझर नरेश ने अपने किसी स्वजातीय विश्वस्त को इस गढ़ का सामंत बनाया था। इस ग्राम के प्रमुख देव का नाम कोटलापाट है। आज भी ग्रामवासी ग्राम के मध्य एक सामान्य प्रस्तर खंड को कोटला पाट देवता के रूप में मानते आ रहे हैं। कालांतर में गोंड शासन काल में इस ग्राम का नाम स्वतंत्र रूप से कुटेला पड़ गया होगा। राजस्व व्यवस्था के अनुरूप आज इसका नाम स्वतंत्र रूप से कुटेला है। गोंडो के मरई गोत्र के छत्रप ने भैनों को पराजित कर इस गढ़ पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। वर्तमान में अघरिया जाति के मालगुजार के वंशज यहां निवास करते हैं।

सुरता
डा. परदेशी राम वर्मा

अच्छे संगीतकार के रूप में सदैव जाने जाएंगे मुरली चंद्राकर

छत्तीसगढ़ अंचल के जाने माने संगीतकार का जन्म दुर्ग जिले के औरी ग्राम में 1932 को हुआ था। इनका कलात्मक संस्कार अर्जुन्दा ग्राम में फलीभूत हुआ। दाऊ रामचन्द्र देशमुख और दाऊ महासिंह चंद्राकर का सानिध्य कला क्षेत्र में आपको मिला। इस क्षेत्र में मुकाम तक पहुंचने के लिए संघर्ष करने में आप सदैव लगे रहते थे। आपका परिश्रम रंग लाया और छत्तीसगढ़ी लोक गीत और संगीत संयोजन में अपनी अमिट छाप छोड़ी। आप भिलाई के सुप्रसिद्ध तबला वादक जगन्नाथ भट्ट के शिष्य थे। राष्ट्रीय विद्यालय दुर्ग और इसके बाद भिलाई इस्पात संयंत्र में शिक्षकीय दायित्व से 1990 को मुक्त हुए। आपने अजगर जी के साथ आरी तरंग, जल तरंग बजाते हुए संगीत के बहाने खूब रियाज किया। माता सेवा, भजन आदि से गुजरते हुए तबले की शास्त्रीयता तक आए। आप एक कवि के रूप में भी अपनी पहचान बनाई। सोनहा बिहान में ' एसन छत्तीसगढ़िया बोली के भेद कइसे बतावव ' गीत से जो लेखन प्रारंभ हुआ तो सरस गीतों की यात्रा ही चल निकली। कारी ' का चर्चित गीत तोर सुरता मा गुने ला भईगे करिया, मोला अलिन, गलिन मा सुने ला भईगे करिया की प्रभाविष्णुता को पचास साठ हजार ग्रामीण दर्शकों की सीधी प्रतिक्रिया से गुजरकर ही कोई समझेगा।

लेखकों से..

छत्तीसगढ़ की लोक कला, लोक साहित्य, पर्यटन, तीज त्योहार, गांव की कहानी, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, शैलचित्र, भित्तिचित्र, कला कृति और पुरखा के सुरता के साथ ही सम सामयिक विषयों पर अधिकतम 500 शब्दों पर लेख भेजें- **Choupalharibhoomi@gmail.com**

ऐतिहासिक
घनश्याम सिंह नाग

कुम्हड़ाकोट की पहचान धरोहर के रूप में

राजा विहीन बस्तर के बड़े डोंगर में अठारह गढ़ के मांझी, मुखिया और आम जनों की बैठक राजा बनाने हेतु की गई। गहन चिंतन मनन कर निर्णय लिया गया कि जल्द ही एक योग्य राजा की तलाश की लिए कुछ प्रमुख लोगों की कमेटी बनाई गई। जिम्मेदार लोग दाल चावल आदि खाद्य समग्री लेकर राजा की तलाश में निकल पड़े।

दूर दूर तक तलाश करते राजा की खोज में ओड़िशा राज्य तक पहुंच गए, किन्तु कहीं भी राज चलाने योग्य कोई व्यक्ति नहीं मिला। खोजबीन में काफी दिन बीत चुके थे, राशन आदि भी समाप्ति की ओर था। थक हार कर लोग वापस बड़े डोंगर लौट रहे थे। रास्ते में भोजन और विश्राम के लिए एक पेड़ के नीचे रुके और भोजन बनाने की तैयारी शुरू हुई। दो लोग सब्जी की खोज में निकले। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें एक झोपड़ी में बुढ़िया और उसकी बाड़ी में कुम्हड़ा दिखाई दी। बुढ़िया से कुम्हड़ा खरीद कर अब लोग वापस आए। जब कुम्हड़ा को सब्जी बनाने के लिए छूरी से काटने लगे, तभी अंदर से आवाज आई, संभलकर काटना कहीं मुझे छूरी न लग जाए। कुम्हड़ा काटने वाला चौंक कर इधर उधर देखा तो साथियों के अलावा कोई अन्य आदमी नहीं दिखा। पुनः कुम्हड़ा को काटने लगे, फिर अंदर से

वही आवाज आई। लोगों में आश्चर्य और उत्सुकता का वातावरण बन गया। धीरे धीरे इस सब्जी को काटने पर अंत में एक मानव शिशु दिखाई दिया। कुछ हो क्षण में वह बाहर आया और बढ़ने लगा तथा देखते ही देखते बालक से जवान हो गया। खोजी दल के सारे सदस्य इस चमत्कार से प्रसन्न हुए और मान लिए यही युवक राज चलाने लायक हो सकता है। उस युवक को अपने साथ लेकर आए और बैठक में लोगों को सारी घटनाओं से अवगत कराए। घटना की जानकारी सभी को होने के बाद सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया कि युवक सर्वथा योग्य है इन्हें राजा बना दिया जाए। इसके बाद राजतिलक कर युवक को राजा बनाया गया, जो कुम्हड़ाकोटिया राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस स्थान पर बालक कुम्हड़ा से प्रकट हुआ, वह स्थान जगतू गुड़ा के पास था जो आज कुम्हड़ाकोट के नाम से जाना जाता है। बस्तर की राजधानी जगदलपुर स्थानांतरित होने के बाद कुम्हड़ाकोट की पहचान एक ऐतिहासिक धरोहर के रूप में बन गई है।